अङ्क-२५
जनवरी-जून २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वेदार्थपरम्परा-एक विवेचन

डॉ. सुधीर कुमार

भारतीय परम्परा में वेदों को ईश्वरोक्त माना गया है।[१] जिस वैदिकी भाषा में वेदों का उपदेश किया गया है वह विश्वमानव की प्रथम भाषा है; ऐसा ऐतिह्यविदों और भाषातत्त्व के परीक्षक विद्वानों का अभिमत है।[२] ईश्वर से वेदज्ञान को प्राप्त करने के उपरान्त अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, ऋषियों ने ब्रह्मादि ऋषियों को कर्णपरम्परा से सुनाकर उपदेश किया[३] अतः वेदों की श्रुति सञ्ज्ञा हुई। उस समय में एक ही भाषा होने से वेद के अर्थ बतलाने की आवश्यकता नहीं थी। श्रवणमात्र से वेदार्थ स्पष्ट हो जाता था और वे ऋषिगण वेद को सुनकर कण्ठस्थ कर लेते थे। कालान्तर में जब श्रवणमात्र से ज्ञान होने में शिथिलता हुई और वेदार्थागमन कष्टकर प्रतीत हुआ तो वेदार्थ की आवश्यकता अनुभव की गयी।[४] इसके उपरान्त ही वेद से सम्बद्ध वाङ्मय की रचना आरम्भ हुई।

वेदार्थ की परम्परा में सर्वप्रथम शाखा ग्रन्थ रचे गये ऐसा वैदिकवाङ्मय के ऐतिह्यविदों का अभिमत है। इसलिए इस अध्याय में सर्वप्रथम शाखाग्रन्थों एवं शाखाकारों के विषय में विचार करना अभीष्ट है;-

(क) शाखाकार एवं शाखाग्रन्थ

महाभाष्यकार, सर्वानुक्रमणीवृत्ति, प्रपञ्चहृदय, अहिर्बुध्न्यसंहिता मुक्तिकोपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों में वेदों की अनेकों शाखाओं का वर्णन प्राप्त होता है। प्राचीन ग्रन्थों में शाखा से पृथक् चरण शब्द का व्यवहार भी समुपलब्ध है। पारिभाषिक चरण का प्रयोग निरुक्त[५], पाणिनीयाष्टाध्यायी[६], माहाभाष्य[७], और प्रतिज्ञापरिशिष्टादि ग्रन्थों में हुआ है। चरण मुख्य शाखा का नाम है और उसके अवान्तर विभाग

---

[१] द्र. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (महर्षि दयानन्द सरस्वती) वेद नित्यत्वविषयः तथा वैदिक वाङ्मय का इतिहास (पं. भगवद्दत रिसर्चस्कालर) प्रथम भाग ।

[२] द्र. वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग – १ से ४ अध्याय ।

[३] द्र. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (स्वामीदयानन्द सरस्वती) वेदोत्पत्ति विषयः ।

[४] निरुक्त – १ – २० (साक्षातृत वेदाङ्गानि च) ।

[५] निरुक्त – १-१७

[६] अनुवादे चरणानाम् – अष्टाध्यायी – २.४.३.

[७] द्रष्टव्य पातञ्जल महाभाष्य – ४.२.१०४-१३४

शाखाग्रन्थ हैं, ऐसा प्रमाण भी समुपलब्ध होता है।[८] जैसे शाकल, बाष्कल, वाजसनेयादि चरण हैं और इनके अन्य अनेक विभाग शाखाएँ हैं। आजकल प्रायशः चरण और शाखा एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगे हैं। किन्तु वस्तुतः चरण और शाखा पृथक्—पृथक् ही स्वीकार्य हैं। मुख्य विभाग चरण और चरणों के अवान्तर विभाग शाखाएँ हैं। शाखाओं की भी अनुशाखाएँ हैं। विष्णुपुराण में अनुशाखाओं का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीधरस्वामी ने विष्णुपुराण के उक्त प्रसङ्ग की व्याख्या में लिखा है— "अनुशाखा अवान्तरशाखाः" । अर्थात अवान्तरशाखाओं को अनुशाखा कहा गया है। विष्णुपुराण के उक्त प्रमाण में प्रयुक्त प्रतिशाखा शब्द से प्रतीत होता है[९] कि प्रत्येक शाखाओं की अवान्तरशाखाएँ हैं। इसी क्रम में पश्चात् शाखाओं की रचना हुई। यद्यपि सौत्र शाखाओं के कोई ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि प्राप्त नहीं होते तथापि इनकी सञ्ज्ञा तो प्राचीनकाल में अवश्य रही है। इस प्रकार विचार करने से ज्ञात हुआ कि वेदसंहिताओं के वैदिकवाङ्मय के अन्तर्गत चरण, शाखा, अनुशाखा और सौत्रशाखा रूप में चार विभाग हैं।[१०]

शाखा किन्हें कहते हैं ? इस विषय में विद्वानों में विमति है। कतिपय विद्वान् मानते हैं कि शाखाएँ वेद के अवयव हैं। सब शाखाएँ मिलकर चरण बनते हैं और सब चरण मिलकर पूरा वेद बनता है। दूसरे विद्वान् मानते हैं कि शाखाएँ वेद-व्याख्यान हैं। स्वामी दयानन्दसरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा "जो शाखा शाखान्तर व्याख्या सहित चारवेद————[११] तथा चान्यत्र लिखा है— "ग्यारह सौ सत्ताईस वेदों की शाखा भी उनके व्याख्यान ही हैं" [१२]। शाखाएँ वेदव्याख्यान हैं विषय में अन्य भी अनेक प्रमाण हैं— यथाहि—

उस चतुष्पाद एक पुराण की अनेक संहिताएँ बनीं। उनमें पाठान्तरों के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं था। यह भेद वैसा ही था जैसा कि वेद शाखाओं में है।[१३] ऐसा वायुपुराण में लिखा है। इसी प्रसङ्ग में लिखा है— प्राजापत्या श्रुति नित्य है परन्तु ये शाखाएँ उसका विकल्पमात्र हैं।[१४] काशिकाकार आचार्य जिनेन्द्रबुद्धि ने अष्टाध्यायी के "तेन प्रोक्तम्" (४—३—१०१) सूत्र पर प्रोक्त के विषय में लिखा

---

[८] जमदग्निप्रवराय वाजसनेयचरणाय यजुर्वेदकण्वशाखाध्यायिने, भोजवर्मा का ताम्रपत्र (१२वींए शताब्दी) इन्सक्रिप्सन्ज ऑफ बंगाल भाग-३ पृष्ठ २१, वीरेन्द्र रिसर्च सो. राजशाही द्वारा प्रकाशित सन् - १९२९

[९] इत्येताः प्रतिशाखाभ्योऽप्यनुशाखा द्विजोत्तम । द्र. विष्णुपुराण – ३.४.२५

[१०] द्र. वै. वा. का इति. (पं. भगवद्दत) भाग-१, अध्याय – १० ।

[११] द्र. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय ।

[१२] द्र. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ग्रन्थकारणशंकासमाधानादिविषय ।

[१३] सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः ।
पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा । वायुपुराण, अध्याय ६१/५९

[१४] प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पस्त्विह मे स्मृताः । वा. पु. ६१७५

है" तेन व्याख्यातं तदध्यापितं वा प्रोक्तमित्युच्यते" शाखाएँ प्रोक्त हैं अतः वे वेदव्याख्यान ही हैं। इसी सूत्र पर भाष्यकार लिखते हैं "छन्द (वेद) बनाये नहीं जाते, वे नित्य हैं। यद्यपि अर्थ नित्य है किन्तु यह जो वर्णानुपूर्वी है वह अनित्य है। इसीके भेद से काठक, कालापक आदि भेद हो गये हैं।[१५]

आचार्य याज्ञवल्क्य का प्रमाण इस विषय में निर्णायक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। वे लिखते हैं "इस यज्ञ में शाखा का पाठ न पढ़े। कुछ लोग ऐसा करते हैं। यह पाठ मानुषपाठ है और यज्ञ की सिद्धि का बाधक है। अतः जैसा मूल ऋचा में पाठ है वैसा ही करना चाहिए" ।[१६]

नाट्यशास्त्र के भाष्यकार अभिनवगुप्त लिखते हैं "यदि नाट्यशास्त्र शब्द से यहाँ ग्रन्थ का ग्रहण है तो उसका कर्त्तृत्व अभिप्रेत है, प्रवचन नहीं। प्रवचन व्याख्यान होता है वह करने से पृथक् होता है, जैसे काठक-प्रवचन कठ का व्याख्यान है। " [१७]

शाखाएँ व्याख्यान-ग्रन्थ हैं इसको कुछ उदाहरणों से जाना जा सकता है—

1. ऋग्वेद के 10—71—6 मन्त्र के "सचिविदं सखायं" का पाठान्तर तैत्तिरीय-आरण्यक में सखिविदं सखायं (1—3—1)—(2—15—1) ऐसा है।[१८] ,
2. यजुर्वेद 1—1—8 के "भ्रातृव्यस्य वधाय" का पाठ काण्वसंहिता में दृद्विषतो वधाय' (1—3) है। [१९]
3. यजुर्वेद 9—40 और 10—18 में "एवं वोऽमी राजा" मन्त्रखण्ड काण्वसंहिता में "एष वः कुरवो राजौष पञ्चाला राजा" , तैत्तिरीयसंहिता में "एष वो भरता राजा" काठक में एष ते जनते राजा और मैत्रायणीयसंहिता में "एष ते जनते राजा" इस रूप में पठित है।[२०]

इन उद्धरणों में स्पष्ट है कि अमी के स्थान पर शाखाकारों ने अपने—अपने जनपद का स्मरण किया है। यह पाठान्तर व्याख्यानरूप ही हैं।

---

[१५] नहिच्छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानिच्छन्दांसि । यद्यत्यर्थो नित्यो यात्वसौ वर्णनुपूर्वी साऽनित्या । तदु भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकमीति । द्र. म. भाष्य – ४.३.१०१

[१६] तदु है केऽचाहुः । होता यो विश्ववेदस इति नेदरमित्यात्मानं ब्रवाणीति तदु तथा न ब्रूयान्मानुषं ह ते यज्ञे कुर्वन्ति व्यृद्धं वै तद्यज्ञस्य यन्मानुषं नेदु व्यृद्धं यज्ञे करवाणीति तस्माद् यथैवर्चानूक्तमेवाऽनुब्रूयात् - ॥ शतपथ – १.४.३.३५

[१७] तत्र नाट्यशास्त्रशब्देन चेदिह ग्रन्थस्तदु ग्रन्थस्येदानीं करणं न तु प्रवचनं । तद्धि व्याख्यानरूपं करणाद् भिन्नम्। कठेनप्रोक्तमिति यथा । भारतनाट्यशास्त्र अभिनवगुप्तः ।

[१८] द्र. उद्धृ. वै. वा. का इति. 'पं. भगवद्दत्त' प्रथम भाग अध्याय (१०)

[१९] वही वै. वा. का इति पं भगवद्दत्त प्रथमभाग अ. १०

[२०] द्र. काण्वसंहिता – ११-३-३, तैत्तिरीय संहिता । १.८.१०.१२. काठक संहिता १५-०७, मैत्रायणी संहिता – ११.६.९ । उद्धृत वै. वा. का इतिहास 'पं भगवद्दत्त" प्रथम भाग अध्याय – १०

उच्चारण के भेद से भी शाखाभेद प्राप्त होते हैं। विभिन्न शाखाओं में एक ही मन्त्रांश निम्न रूपों में पठित प्राप्त होते हैं।[२१]

सरड्ड वा अश्वस्य। सरट् ह वा अश्वस्य। सरट् ढ् ह वा अश्वस्य। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि कृतसन्धि पाठ और अकृतसन्धि पाठ से भी पाठभेद करके शाखान्तर निर्माण हुआ है।

मेरे विचार से वेद प्रारम्भ से ही श्रुति-परम्परा से पढ़े-पढ़ाये जाते रहे हैं तो विभिन्न प्रवक्ताओं की उच्चारणशैली, सामर्थ्य, स्पष्टता, स्वर, तथा कर्मठता के कारण पाठ में वैभिन्य आया होगा। जैसा कि भाष्यकार ने लिखा है— यर्वाणः तर्वाण ... नाम जप्पयो बभवः।[२२]

इस तरह का उच्चारण शिष्यों ने जब उनसे पढ़ा होगा तो वही शिष्यों और प्रशिष्यों ने भी पढ़ा होगा और वही परम्परा बन गयी होगी। शाखाभेद का एक कारण यह है। इस भेद के कारण गुरुजन हैं।

दूसरा कारण यह है कि जब कोई शब्दार्थ शिष्यों को प्रतीत न हुआ होगा अथवा द्वय अथवा द्वयर्थ होने से शङ्का हुई होगी तो शिष्यों ने गुरुजनों से पूँछा होगा और उन्होंने उसके स्थान पर शब्दान्तर अथवा पर्यायवाची शब्द बोला होगा। जैसे भ्रातृव्य शब्द भ्रातृपुत्र और शत्रु दोनों ही अर्थों में है। शिष्यों के शङ्का करने पर आचार्य कण्व ने भ्रातृव्य के स्थान पर उस प्रसङ्ग में द्विषतः शब्द का प्रयोग कर दिया। अब शिष्यों ने 'भ्रातृव्यस्य' के स्थान पर द्विषतः शब्द ही कण्ठस्थ किया होगा। इस प्रकार गुरुजनों और शिष्यों-प्रशिष्यों के कारण मूल वेद के अनेक शाखा ग्रन्थ बन गये होंगे।

यदि शाखाओं को वेद का अवयव माना जाएगा; जैसा कि कुछ विद्वानों का अभिमत है; तो अनेक विप्रतिपत्तियाँ समुत्पन्न होंगी जैसे कि—

1. वैदिकवाङ्मय के इतिहासज्ञों के अनुसार सौत्रशाखाएँ भी हैं। यदि शाखाओं को वेदावयव मानेंगे तो अनेक सौत्रग्रन्थ भी वेद बन जाएंगे। यह सिद्धान्त वैदिक दृष्टि से सर्वथा अनुचित है।
2. नृसिंहपूर्वतापिनी-उपनिषद् में चारों वेद, अङ्ग और शाखा को पृथक्—पृथक् बतलाया गया है।[२३] यदि शाखाएँ वेदावयव स्वीकार कर ली जाएँगी तो इन वचनों से विरोध होगा।
3. बृहज्जाबालोपनिषद् में भी शाखाओं को वेदों से पृथक् परिगणित किया है।[२४] उससे भी विरोध होगा।

---

[२१] तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – ५.३८.४०

[२२] प्र. महाभाष्य पस्पशाह्निक ।

[२३] ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सशाखाश्च चत्वारः पांदा भवन्ति । नृसिहतापनी उपनिषद् १-२

[२४] य एतद् वृहज्जाबालं नित्यमधीये स ऋचोऽधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वणमधीते सोंगिरसमधीते स शाखाअधीते स कल्पानधीते । वृहज्जाबालोपनिषद्, अष्टम ब्राह्मण, पञ्चमखण्ड ।

4. महर्षि पतञ्जलि द्वारा उल्लिखित "**अनुवदते कठः कलापस्य**[२५] और विश्वरूप द्वारा लिखित **"न हि मैत्रायणीशाखा काठकस्यात्यन्तविलक्षणा"** आदि वाक्य भी यही सिद्ध करते हैं कि शाखाएँ वेदावयव नहीं हैं।

इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि शाखाएँ वेदावयव नहीं हैं। उच्चारणभेद सङ्क्षिप्त व्याख्यान, पठन—पाठन में क्लिष्टतानिवारण और स्पष्टीकरण के कारण से शाखाओं का निर्माण हुआ है। यूँ यह पृथक् से एक शोध विषय है कि शाखाओं की विभिन्नता का आकलन करके उनकी रचना—मूलकता, उपादेयता, वेदों से सम्बद्धता और वेदावयवता का परीक्षण किया जाय तथा इसी परिप्रेक्ष्य में अनेक शाखाएँ जो लुप्त हो गयी हैं उनका भी अन्वेषण किया जाए। इससे वेदराशि समृद्ध होगी।

इतिहासज्ञों के मतानुसार वेदशाखाओं का प्रवचन काल कलि के आरम्भ से लगभग एक सौ पचास वर्ष पूर्व है। वेदशाखाओं के प्रवचन का कोई एक काल निर्धारित करना अत्यन्त क्लिष्ट व दुस्साध्य है। यतोहि शाखाओं का प्रवचन किसी एक काल में हुआ ही नहीं, वह समय—समय पर हुआ है। हाँ यह कहा जा सकता है कि शाखा-प्रवचन का आरम्भ कलियुग के आरम्भ से 150 वर्ष पूर्व हुआ। उससे पूर्व मूल चार वेद ही पढ़े-पढ़ाये जाते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्व में वेद एक ही था, व्यासजी ने वेदों के चार विभाग किये इसीलिए वे वेदव्यास कहलाये। किन्तु सिद्धान्त की कसौटी पर यह मत ठीक नहीं बैठता। क्योंकि वेद नित्य हैं और नित्य वेदों में ऋग्वेद में ही चारों वेदों का नाम प्राप्त है तो वेदों का विभाग व्यासजी ने किया यह कथन अल्पज्ञता और तथ्यहीनता से अधिक कुछ नहीं है। हाँ व्यासजी ने वेदों को व्यवस्थित किया, प्रचार किया, पठन—पाठन में प्रयत्न किया, यही कहना उचित है।

वेदों की विभिन्न शाखाओं की सम्पूर्ण सूची एवं वैदिकवाङ्मय की सूची पूर्व अध्याय में दी जा चुकी है, अतः यहाँ अधिक विस्तार अनपेक्षित ही है। शाखाकार, शाखाग्रन्थ, उनकी प्रशाखाओं का विशद विवेचन इतिहास ग्रन्थों का विशेषतः पं. भगवद्दत्त रिसर्चस्कालर और प. रघुनन्दन शर्मा ने अपने ग्रन्थों वैदिकवाङ्मय का इतिहास के प्रथम भाग तथा "वैदिक सम्पत्ति" में किया है; वहाँ देखा जा सकता है।

डॉ. सुधीर कुमार
एसोसियेट प्रोफेसर,
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविघालय, दिल्ली

[२५] द्र. महाभाष्य – २.४.३. १४ – द्र. बालक्रीडा (विश्वरूप) १-७